हमारे राष्ट्रीय प्रतीक

धर्मपाल शास्त्री

हमारे राष्ट्रीय प्रतीक

मूल्य : तीस रुपये (Rs. 30.00)

संस्करण : 2006 © शिक्षा भारती
ISBN : 81-7483-071-5
HAMARE RASHTRIYA PRATEEK (Story)
by Dharmpal Shastri

शिक्षा भारती, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली

हमारे राष्ट्रीय प्रतीक

धर्मपाल शास्त्री
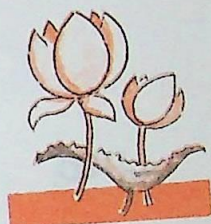
शिक्षा भारती

क्रम

हमारा राष्ट्रीय चिह्न—सिंहशीर्ष 9
हमारा राष्ट्रीय ध्वज—तिरंगा 14
हमारे राष्ट्रीय गान और गीत 24
भारत का राष्ट्रीय पक्षी—मोर 30
हमारा राष्ट्रीय पशु—शेर 40
हमारा राष्ट्रीय पुष्प—कमल 47

दो शब्द

राष्ट्र एक विशाल इकाई है जिसके पाँच घटक हैं—एक भूमि, एक प्रजा, एक संस्कृति, एक सरकार और एक नाम। इसमें पहले दो अर्थात् भूमि और प्रजा राष्ट्र के प्राकृतिक घटक हैं, संस्कृति और नाम सांस्कृतिक घटक और सरकार राजनैतिक घटक हैं। इन पाँचों घटकों से एक राष्ट्र वैसा ही मज़बूत और बलवान बनता है, जैसे पाँच अँगुलियों से एक मज़बूत मुट्ठी।

प्रत्येक महान् राष्ट्र के अपने-अपने राष्ट्र प्रतीक होते हैं। जो बनाए नहीं जाते अपितु अपने आप बन जाते हैं। राष्ट्र के घटकों की तरह से ये प्रतीक भी तीन प्रकार के होते हैं—

प्राकृतिक प्रतीक—जैसे सिंह, मोर और कमल भारत के राष्ट्र-चिह्न हैं।

सांस्कृतिक प्रतीक—जैसे भारत के राष्ट्रगीत और राष्ट्रगान।

राजनैतिक प्रतीक—जैसे तिरंगा आदि।

ये प्रतीक अपने स्वाभाविक गुणों के कारण राष्ट्र की समस्त भूमि, सारी प्रजा, समग्र संस्कृति पर ऐसे छा जाते हैं कि वहाँ की सरकार भी उन्हें मान्यता देने को विवश-सी हो जाती है। हमारे उपरोक्त छह राष्ट्रप्रतीक भी युग-युग से यहाँ की सारी भूमि पर और सारी प्रजा में इतने लोकप्रिय हो चुके हैं कि यहाँ के कवियों ने सिंह, मोर और कमल के गुणों के अनगिनत गीत गाए, मूर्तिकारों

ने बड़े चाव से उनकी मूर्तियाँ घड़ीं, चित्रकारों ने उनके चित्र बनाए, उनके विषय में गाँव-गाँव में लोकगीत गाए जाते हैं, लोककथाएँ सुनी सुनाई जाती हैं, अनेक देवी-देवताओं से उनके सम्बन्ध जोड़े जाते हैं और मंगल कार्यों में घर-आँगन में, दीवारों पर और वेदी के चारों ओर उनके लोकचित्र रचे जाते हैं। वस्तुतः ऐसे ही तथ्य हमारे राष्ट्रचिह्न बनने के योग्य हैं जिनमें हमारे समाज की सच्ची झलक मिलती है और जो हमारे राष्ट्र का सच्चा प्रतिनिधित्व कर सकते हैं। इस प्रकार भारत की भूमि, भारत की प्रजा और भारत की संस्कृति, इन्हें पहले से ही मान्यता प्रदान की जा चुकी है। 26 जनवरी, 1950 को भारत सरकार ने भी अपनी स्वीकृति की मुहर लगाकर राष्ट्रीयमान्यता के अन्तिम चरण को पूरा किया है। इस प्रकार सिंह, मोर, कमल, तिरंगाध्वज, दो गीत हमारे भारत के संवैधानिक राष्ट्रप्रतीक हैं। अतः इनमें से प्रत्येक का राष्ट्रीय परिचय पाना प्रत्येक भारतीय का राष्ट्रीय कर्तव्य है।

हमारा राष्ट्रीय चिह्न–सिंहशीर्ष

यह हमारा राष्ट्रचिह्न है–सिंहशीर्ष। ऊपर एक गोल कण्ठे पर चार सिंह परस्पर एक दूसरे की पीठ-से-पीठ सटाए खड़े हैं मध्य में एक पाषाण- पट्टी पर 24 अरोंवाला एक चक्र खुदा है। जिसके चारों ओर एक हाथी, एक घोड़ा, एक साँड और एक सिंह भिन्न-भिन्न मुद्राओं में अंकित हैं। नीचे 'सत्यमेव जयते' का जयघोष लिखा है। 26 जनवरी, 1950 को इसी सिंहशीर्ष को भारत का राष्ट्रचिह्न

घोषित किया गया था। इसका सम्बन्ध हमारे महान् तपस्वी महात्माबुद्ध, हमारे महान् सम्राट अशोक और हमारी संस्कृति के महान् आदर्शों से है जिनकी सत्यकथा इस प्रकार है।

लुम्बिनी का राजकुमार सिद्धार्थ बड़ा भावुक व्यक्ति था। एक बूढ़े की झुकी हुई कमर और एक मुर्दे की अर्थी को देखकर उसे यह वैराग्य हो गया था कि न हमारी जवानी सत्य है और न हमारा जीवन। तो सत्य क्या है? वह कौन-सा मूल तत्त्व है जो न कभी बूढ़ा होता और न कभी मरता है—यह खोजने के लिए वह अपना राजपाट, अपने माता-पिता, अपने प्रियपुत्र व पत्नी तथा सभी भोग-विलासों को छोड़कर निकल पड़ा अपने घर से। 'जिन ढूँढ़ा तिन पाइँया, गहरे पानी पैठ।' 'गया' में तप करते-करते आखिर एक दिन उसे उस सत्य का बोध हो ही गया जिसकी उसे तलाश थी। इस बोध के कारण सिद्धार्थ का नाम बुद्ध और गया का नाम बुद्धगया पड़ गया। यहाँ इतने कठिन श्रम से पाए गए रहस्य को भला वह केवल अपने तक सीमित कैसे रख सकता था? उसने चारों दिशाओं में उसका प्रकाश फैलाने का संकल्प कर लिया। इसी उद्देश्य से महात्मा बुद्ध ने बनारस के पास सारनाथ के पवित्र मृगदाव वन में अपने शिष्यों को सत्य के 24 अंगों का पहला उपदेश देकर उन्हें निर्देश दिया कि मेरे प्यारे भिक्खुओ, जैसे एक गोल चक्र घूमता हुआ चारों दिशाओं में भ्रमण करता है उसी प्रकार तुम भी चारों दिशाओं में घूम-घूमकर सत्य के इन 24 उपदेशों का प्रचार करो। चक्र की इस उपमा के कारण बुद्ध के 24 उपदेश 'धर्मचक्र' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

बुद्ध के इस धर्मचक्र का सबसे अधिक प्रचार बौद्धसम्राट् अशोक ने किया। इसकी याद में अशोक ने सारनाथ के ठीक उसी स्थान पर 70 फुट ऊँचा एक धर्मराजिक स्तूप बनवाया जहाँ

महात्मा बुद्ध ने धर्मचक्र का पहला उपदेश दिया था। इसी स्तूप का शिखर भाग वह सिंहशीर्ष है जिस पर 24 अरोंवाला धर्मचक्र खुदा है और जिसे भारत के राष्ट्रचिह्न के रूप में अपनाया गया है। इस प्रकार धर्मचक्र के प्रसंग में सिंहशीर्ष का ऐतिहासिक महत्त्व स्पष्ट है पर राष्ट्रचिह्न के सन्दर्भ में इसके अंश का विशेष राष्ट्रीय अर्थ है।

सिंहों की चार आकृतियाँ चार सिंह नहीं अपितु चार धर्मसिंह हैं। वे केवल युद्धवीर ही नहीं अपितु धर्मवीर और सत्यवीर भी हैं। ऐसी ही वीरता हमारे राष्ट्र का और हमारा भी आदर्श है। जैसे चार सिंह चारों दिशाओं में विजय करते हुए आगे ही आगे बढ़ते जाते हैं उसी प्रकार हमारा राष्ट्र भी चारों ओर धर्मविजय और सत्यविजय के सपने देखता है, जैसी विजय सम्राट् अशोक ने की थी। जैसे अशोक ने बिना तीर-तलवार के चीन, लंका, बर्मा, मलयेशिया और जापान में धर्मविजय प्राप्त की थी वैसे ही हमारा राष्ट्र भी देश में और विदेश में अब फिर धर्मविजय प्राप्त करना चाहता है। संक्षेप में, सिंहशीर्ष के चार सिंहों का अर्थ है—तन में वीरता, मन में वीरता, वचन में वीरता और जीवन में वीरता।

धर्मचक्र का पहला अर्थ सम्राट् अशोक का वह सन्देश है जो उसने स्थान-स्थान पर अपने शिलालेखों में खुदवाया है—'शस्त्रों के बल पर की गयी विजय झूठी है। सच्ची विजय तो वह है जो सत्य और प्रेम के बल पर लोगों के हृदय पर प्राप्त की जाती है। ऐसी विजय यदि सारी दुनिया प्राप्त कर ले तो हम उसे धर्मविजय कहेंगे।'

धर्मचक्र का दूसरा अर्थ है—सब धर्मों का एक साझा चक्र—धर्म निरपेक्षता अर्थात् कोई सम्प्रदाय हमारा अपना नहीं, कोई सम्प्रदाय हमारे लिए पराया नहीं। हमारा विश्वास तो धर्म की उन मूल

शिक्षाओं में है जिनका उपदेश सब सम्प्रदाय समान रूप से देते हैं। सत्य, न्याय, दया आदि में सबकी साझी शिक्षाएँ ही धर्मचक्र के 24 अरें हैं।

धर्मचक्र का तीसरा अर्थ है—सब धर्मों का धर्म राष्ट्रधर्म। हम, हमारा घर, हमारे भाई-बन्धु, हमारा परिवार, हमारा गाँव, हमारा नगर, हमारा प्रान्त और हमारी धन सम्पति—इन सबके प्रति हमारा कर्तव्य बाद में है, इन सबसे पहले हमारा कर्तव्य अपने राष्ट्र के प्रति है। हमारे मत-मतान्तर, हमारे विश्वास, हमारे मन्दिर-मस्जिद-गुरुद्वारे और पूजा कीर्तन के हमारे ढंग—सबकी अपनी-अपनी जगह हैं पर इन सबसे ऊँचा आसन है हमारे राष्ट्र का। यही सब धर्मों का चक्र है अर्थात् धर्मचक्र।

धर्मचक्र का चौथा अर्थ है—धर्मसहित चक्र-पहिया जो कि विज्ञान के सबसे मूल आविष्कारों में एक है और आधुनिक युग में राष्ट्रों की औद्योगिक प्रगति का मूल आधार है। अन्तर केवल इतना है कि यह एक सामान्य पहिया न होकर धर्ममय पहिया है—धर्मचक्र। भारत ऐसी वैज्ञानिक उन्नति नहीं चाहता जो अणुबम बनाकर सृष्टि का संहार करे, अपितु भारत का वैज्ञानिक नारा है 'विज्ञान वरदान के लिए, उद्योग नवनिर्माण के लिए।'

भारतीय कृषि, कृषक और ग्रामीण उन्नति का मूल आधार है—बैल। आदिकाल से भारत एक कृषिप्रधान और ग्राम-बहुल देश है। इसके प्रसंग में बैल का अर्थ है—भरपूर कृषि। उन्नति द्वारा देश में हरित-क्रान्ति और अधिकाधिक उत्पादन द्वारा श्वेत-क्रान्ति का लक्ष्य।

भागते हुए घोड़े का अर्थ है—तेज़ गति और अश्वशक्ति अर्थात् ऊर्जा के नए-नए स्रोतों का विकास।

हाथी जंगल का सबसे बड़ा, सबसे बुद्धिमान्, सबसे शक्तिमान

और पालतू होने पर भी 'जीवित हाथी लाख का, मरा हाथी सवा लाख का' है। इस प्रकार हाथी का पहला अर्थ है—पशु धन का विकास। दूसरा अर्थ है—पशुओं का संरक्षण देकर उन्हें मानव के लिए उपयोगी बनाना। भारत में हाथी शान-शौकत की निशानी माना जाता है जिसका इशारा भारत के लिए ऐश्वर्य की कामना की ओर है।

कमल का एक अर्थ है—कला और सौन्दर्य। दूसरा अर्थ है—लक्ष्मी। सरल शब्दों में कमल के रूप में भारत में कला-कौशल, प्राकृतिक सौन्दर्य और आर्थिक उन्नति की कामना की गयी है।

'सत्यमेव जयते' उपनिषद् के इस नारे का अर्थ है—'सत्य की जय हो।'

संक्षेप में, हमारे समूचे राष्ट्रचिह्न का अर्थ यह जयघोष है—भारत की धर्मविजय हो।

हमारा राष्ट्रीय ध्वज—तिरंगा

यह तिरंगा झण्डा है। हमारी सरकार ने 23 जुलाई, 1947 को इसे भारत के राष्ट्रध्वज के रूप में स्वीकार किया है जिसका ठीक-ठीक मानक इस प्रकार है—

झण्डा, हाथ के कते-बुने सूती या रेशमी वस्त्र का बना हो तो अच्छा, अन्यथा दूसरे प्रकार के कपड़े का भी बनाया जा सकता है। झण्डे की लम्बाई चौड़ाई का अनुपात 3 : 2 निश्चित है। इसमें बराबर माप की तीन आयताकार पट्टियाँ होनी चाहिए। झण्डे में ऊपर की पट्टी केसरिया रंग की, बीच की पट्टी श्वेत रंग की और नीचे की पट्टी हरे रंग की, सफेद पट्टी के बीचोंबीच नेवी नीले रंग का अशोक चक्र या धर्मचक्र छपा हो या कढ़ा हो।

राष्ट्रध्वज हमारे राष्ट्र की शान और मान है। अतः इसके सम्मान की रक्षा के लिए आठ नियमों का पालन करना आवश्यक है : 1. राष्ट्रध्वज सबसे ऊँचा रहे 2. इससे ऊँचा या इसके दायीं ओर अन्य कोई झण्डा नहीं फहराना चाहिए। 3. ध्वज को लिटाकर या झुकाकर ले जाना या रखना मना है। 4. जुलूस में ले जाते समय इसे ध्वजवाहक के दाएँ कंधे पर रखना चाहिए। यह केवल सरकारी भवनों पर या स्वतंत्रता दिवस, गणतन्त्रदिवस, गाँधी-जयन्ती व राष्ट्रीय पर्वों पर लहराना चाहिए। 5. राष्ट्रीयध्वज या इससे

मिलते-जुलते ध्वज का व्यापारिक उपयोग करना अपराध माना जाएगा। 6. खिड़की या मकान पर लहराते समय केसरिया रंग सदा ऊपर की ओर रहे। 7. राष्ट्रीयध्वज पर कुछ भी लिखना मना है। 8. सजावट, विज्ञापन, साड़ियों के बार्डर या मेज़पोश आदि में राष्ट्रीयध्वज के रंगों का उपयोग नहीं किया जा सकता।

संक्षेप में— झण्डा ऊँचा रहे हमारा।
ध्वज का हो सम्मान हृदय में
रुचि हो सबकी धर्म विजय में
कदम हमारे बढ़ते जाएँ
ध्वज का हो जिस ओर इशारा,
झण्डा ऊँचा रहे हमारा।

ध्वज का अर्थ है, गति।

जो स्वयं गति करता है, लहराता है और दूसरों को गति की प्रेरणा देता है उसे ध्वज कहते हैं। चलती भाषा में उसे निशान भी कहते हैं क्योंकि वह राष्ट्र के प्रति हमारे कर्तव्यों की एक निशानी है। ध्वज में अक्षरों, शब्दों या वाक्यों के बदले संकेतों की सरल भाषा में राष्ट्र के सन्देश अंकित हैं, जिन्हें हर कोई बाँच ले, हर कोई समझ ले।

ध्वज की हर गति का कुछ मतलब है। खुले आकाश में अपना मस्तक उठाकर वह हमें संकेत कर रहा है कि भारत के सपूतो, मेरी तरह तुम भी स्वतन्त्रता के खुले वातावरण में आज़ाद लोगों की तरह अपना सिर ऊँचा उठाकर चलो। स्वतन्त्र नागरिकों की यही निशानी है क्योंकि जो जीतता है सदा उसी का झण्डा लहराता है। जो दुश्मन के सामने झुक जाता है। उसका झण्डा भी झुक जाता है। यह ध्वज का पहला राष्ट्रसन्देश है।

जैसे तिरंगा अपने ध्वजदण्ड को मज़बूती से थमाकर आँधियों और तूफानों में भी निर्भय लहराता है, जैसे वह केन्द्र के साथ जुड़े रहने के कारण, हवाओं के तेज़-से-तेज़ झोंकों में बह नहीं जाता, मूसलाधार बरसती बौछारों में भी खो नहीं जाता, उसी प्रकार उसकी यह मौन दृढ़ता हमें भी यह प्रेरणा दे रही है कि हम भी अपने जीवन के आवश्यक कर्तव्य निभाते हुए अपने स्वार्थों में खो न जाएँ अपितु सदा अपने राष्ट्र के साथ तन-मन-धन से जुड़े रहें। इससे हमारा भी कल्याण होगा और हमारे राष्ट्र का भी। यह ध्वज का दूसरा राष्ट्रसन्देश है।

भूमि में गहराई तक गड़ा हुआ ध्वजदण्ड निरन्तर हमें यह संकेत कर रहा है कि जैसे मेरी सम्पूर्ण गतिविधियों का आधार

मेरा ध्वजदण्ड है और ध्वजदण्ड का भी मूल आधार है यह भारतभूमि, जैसे इस भूमि के गर्भ से मेरे लौहदण्ड का, मेरे वस्त्र का, मेरे तीनों रंगों का और मेरे अंग-अंग का निर्माण हुआ, जैसे इसी भूमि का आँचल थामकर मैंने अधर में खड़ा होना सीखा और जैसे इसी की मिट्टी में मेरी जड़ें मज़बूती से ज़मी हुई हैं, जैसे मेरे जीवन का मूल आधार यह भारत-भूमि है उसी प्रकार इस देश के नागरिको! तुम सबकी प्राणाधार भी यही भारतभूमि है, यही मातृभूमि है। इसी के मिट्टी-पानी से तुम्हारा भी जन्म हुआ। इसी के अन्न-जल से तुम जवान हुए। इसी का रस रक्त तुम्हारी नस-नाड़ियों में और तुम्हारे हृदय में प्रवाहित होता है। तुम्हारे अंग-अंग में, रोम-रोम में और कण-कण में यही भारत-भूमि समाई है। आज तुम जो कुछ हो, इसी भूमि की बदौलत हो। यह भूमि रहेगी तो हम तुम भी रहेंगे। यह न रहेगी तो न हम तुम रहेंगे और न हमारा घर-परिवार रहेगा। हमारे गाँव, हमारे नगर, हमारे प्रानत और हमारी ज़मीन-जायदाद—जो कुछ भी आज हमारा है—उन सबका एकमात्र आधार है, यही मात्भूमि! अतः हमारी हर चीज़ से बढ़कर है भारत। हमारे भाई-बन्धु, हमारी धन-सम्पत्ति, हमारा धर्म, हमारी भाषा और स्वयं हम—ये सब कुछ इस भूमि से घटकर है। चाहे हम जहाँ भी जाएँ, खेलकूद, वाणिज्य-व्यापार, शिक्षा-दीक्षा या सैर सपाटे के लिए देश-विदेश के किसी भी कोने में क्यों न चले जाएँ हमें अपने जीवन का यह मूलमन्त्र कभी नहीं भूलना चाहिए :

'चिड़िया जितनी उड़े अकास, दाना है धरती के पास।'

यह ध्वज का तीसरा राष्ट्र सन्देश है।

ध्वज का काम है लहराना। वह हवाओं के संग-संग दिन-रात लहराता है। पुरवैया हवाएँ भी चलती हैं और पछाहीं भी। उत्तर

के बर्फीले देशों से शीत लहरें भी आती हैं और अरब सागरीय मानसून हवाएँ भी। सबके अपने-अपने गुण हैं, अपने-अपने दोष हैं। हर रंग, हर ढंग की हवाएँ, ध्वज के पास आती हैं। ध्वज उनमें से किसी को ठुकराता नहीं अपितु बाँहें पसारकर अपने सब मेहमानों का हार्दिक स्वागत करता है। उनके संग-संग रहता और लहराता है और उनके साथ अठखेलियाँ करता है। पर वह भूलकर भी उनमें बह नहीं जाता और अपने मूलरूप का कभी त्याग नहीं करता बल्कि अपने दोनों हाथ पसारकर हर परदेशी मेहमान से उसके अच्छे गुणों को ग्रहण कर लेता है। हवा के हर झोंके से उसे नई प्राणशक्ति, नई ऑक्सीजन, नई ताज़गी, नई गति और नई स्फूर्ति प्राप्त होती है जिससे हमारा ध्वज सदा नवीन और सदा गतिशील बना रहता है। भारतीय परम्परा के अनुसार वह केवल गुणों को ही ग्रहण करता है दोषों को नहीं। आँधियों के साथ उड़कर आए धूलकणों को वृथा समझकर उन्हें छोड़ देता है। लहराते हुए तिरंगे की हर तरंग हम भारतवासियों को इसी ग्रहणशीलता की प्रेरणा देती है जो हमारी संस्कृति की एक बड़ी विशेषता है।

प्राचीनकाल से हम उदार और ग्रुणग्राही रहे हैं। मधुमक्खी की तरह जहाँ भी मधुरस मिलता है उसे बटोरने में हम पीछे नहीं रहते। विदेश से आए धर्मो, जातियों, भाषाओं और कलाओं में जो बात हमें अच्छी लगी, उसे लेकर हमारी संस्कृति दिनोंदिन धनवान् और बलवान् बनती रही है। इस्लाम, ईसाई, पारसी धर्म आदि विदेशों से आए थे पर धीरे-धीरे वे हमारे राष्ट्रधर्म के ही अंग बन चुके हैं। उनके साथ आई अंग्रेज़ी, फ़ारसी, अरबी आदि अनेक भाषाएँ और हज़ारों शब्द हमारी भाषाओं में ऐसे घुलमिल गए हैं, जैसे खिचड़ी में घी। हमारा ध्वज हमें इसी उदारता और ग्रहणशीलता

की प्रेरणा देता है। पर साथ ही वह हमें सावधान करता है कि खबरदार पराई चकाचौंध के चक्कर में पड़कर कहीं अपनी संस्कृति से भटक न जाना। अन्यथा धोबी के कुत्ते की तरह तुम कहीं के न रहोगे—न घर के, न घाट के। अतः अपनी संस्कृति का यह मूलमन्त्र भारतेन्दु के शब्दों में सदा याद रखो—

अपनी भाषा है भली, भलो आपुनो देश,
सब कुछ अपनो है भलो, यही राष्ट्रसंदेश।
यह ध्वज का चौथा राष्ट्रीय सन्देश है।

हमारे ध्वज का नाम है तिरंगा। ध्वज एक और रंग तीन। झण्डे का यह तिरंगापन हमारे देश के रंग-बिरंगेपन और अनेकता में एकता की ओर सीधा संकेत करता है। अन्तर केवल इतना है कि तिरंगे में गिनती के तीन रंग हैं जबकि भारत की हर चीज़ रंग-बिरंगी है। दुनिया का कोई रंग ऐसा नहीं जो यहाँ विद्यमान न हो। यहाँ के रंग गिनने लगें तो गिनती भूल जाती है। उदाहरणतया—भूगोल में हमारा भारत एक है जिसके तीन भू-भाग हैं—पहाड़ी, मैदानी और पठार। इनमें चार रंग की मिट्टियाँ पाई जाती हैं—लाल, काली, पथरीली और कछारी। इनमें पाँच रंग की वनस्पतियाँ उगती हैं—सदाबहार, मौसमी, पहाड़ी, रेगिस्तानी और तटवर्ती। इन वनस्पतियों की जातियाँ सैकड़ों में न होकर हज़ारों में है। यहाँ हर दो महीने बाद मौसम का रंग बदलता है, यहाँ छह ऋतुएँ होती हैं—बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, हेमन्त, शिशिर और शीत। यहाँ के जंगलों में पाँच सौ प्रकार के पशु, 250 जातियों के पक्षी और 30 हज़ार किस्म के कीड़े-पतंगे पाए जाते हैं। मानो यह प्रकृति का एक विशाल चिड़ियाघर हो जिसमें सबसे अधिक संख्या में जीव-जन्तु विद्यमान हैं। यह तो केवल भारत का ही प्राकृतिक

रंगीलापन है। राजनैतिक रंग इससे अलग है। भारत के विभिन्न प्रदेशों में लगभग तीन हज़ार नगर और लाखों गाँव हैं जिनमें 15 मुख्य भाषाओं के अतिरिक्त सैकड़ों उपभाषाएँ और बोलियाँ बोली जाती हैं। भारत के इन अनगिनत रंगों का निशान है—तिरंगा। जैसे यहाँ अनेक रंग रहते हुए भी भारत एक है उसी प्रकार अनेक रंगोंवाला तिरंगा भी एक है। इसी अनेकता में एकता का सन्देश दे रहा है हमें तिरंगा। यह ध्वज का पाँचवाँ राष्ट्रसन्देश है।

ध्वज एक वस्त्र नहीं, एक अर्थ है; वह अर्थ जो उसे हमारे इतिहास ने दिया है। तिरंगे के तीनों रंगों का अपना-अपना एक अर्थ और अपना-अपना एक इतिहास है। केसरिया का अर्थ है—केसर का रंग। कश्मीर के प्रसिद्ध फूल केसर में तीन गुण हैं—सुरंग, सुगन्ध और संजीवनी शक्ति। उसके इन तीनों गुणों के कारण वीर पत्नियाँ युद्ध के लिए प्रस्थान करते हुए अपने वीरपति के माथे पर केसर-तिलक लगाती हैं जिसका अर्थ होता है—

'हे मेरे वीर! तुम चमचमाती तलवार और रंग-बिरंगा वीर वेश पहन कर केसर की तरह शस्त्रों से सजधज कर जाओ। युद्ध में तेरी रग-रग में केसर जैसी संजीवनी शक्ति का संचार हो और धर्म-रक्षा के लिए जब तुम जीतकर लौटो तो केसर की सुगन्ध की तरह तुम्हारा यश संसार में फैले।'

केसर के इन तीन गुणों के कारण केसरिया रंग वीरों का प्रिय रंग बन गया। इसीलिए मध्यकाल से अब तक वीरों का झण्डा केसरिया ध्वज रहा है। राजपूत लोग जब अपने जीवन का मोह छोड़कर अन्तिम निर्णायक युद्ध में कूद पड़ने को जाते थे तब वे केसरिया बाना पहनते थे जिसका मतलब होता था 'मरना या मारना' केसरिया रंग के इस ऐतिहासिक अर्थ के अनुसार तिरंगे की केसरी

पट्टी का नारा है—वीर बनो। यह ध्वज का छठा राष्ट्रसन्देश है।

तिरंगे की दूसरी पट्टी श्वेत है। भारत में और भी विश्व-समाज में भी शान्ति का रंग श्वेत माना जाता है। इसीलिए युद्ध के दौरान जब कोई पक्ष श्वेतध्वज खड़ा करता है तो उसका सीधा-सादा मतलब होता है—'हम युद्ध बन्द करके सुलह और शान्ति का प्रस्ताव करते हैं।' श्वेत रंग के इस विश्व प्रसिद्ध अर्थ के अनुसार तिरंगे की श्वेतपट्टी ऐसी शान्ति का निशान है जिससे चारों ओर मित्रता का वातावरण तैयार होता है, जिससे कटुता मिटती है और तनाव कम होता है, जिससे शस्त्रों की दौड़ समाप्त होती और आपसी बातचीत द्वारा मतभेदों को दूर करने का रास्ता साफ होता है। संक्षेप में, ध्वज का श्वेत रंग हमें प्रेरणा दे रहा है कि तुम शान्ति वीर बनो। यह ध्वज का सातवाँ राष्ट्रसन्देश है।

ध्वज का आठवाँ सन्देश है तिरंगे की तीसरी पट्टी जो भारत की हरियाली और खुशहाली की प्रतीक है। हरियाली का वरदान तो हमें प्रकृति ने दिया है। उत्तर में हिमालय की गोदी में बसी कुल्लू और कश्मीर की सुन्दर घाटियाँ हैं तो पंजाब में शिपकीघाटी और उत्तर-पूर्व में चुम्बीघाटी अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध हैं। दिल्ली से लेकर कलकत्ता तक ढाई हज़ार किलोमीटर लम्बा सिन्ध-गंगा का मैदान संसार का सबसे बड़ा हरा-भरा मैदान है। दक्षिण में विन्ध्याचल और सतपुड़ा पर्वतों से लेकर समुद्रतट तक का सारा प्रदेश नर्मदा, ताप्ती, महानदी और कृष्ण कावेरी नदियों के कारण स्वर्ग के नन्दनवन से कम हरा-भरा नहीं। इस प्रकार भारत के प्रदेशों का हर दिन हरियाली तीज है और यहाँ का हर त्योहार वन-महोत्सव है। हरे रंग का दूसरा अर्थ किसानों के कड़े परिश्रम से उगाई गई हरी-भरी खेतियां हैं। इसका तीसरा

अर्थ है—भारत की भूमि में भरी खनिज सम्पदा। चौथा अर्थ है—हमारे कल-कारखानों द्वारा भरपूर औद्योगिक उत्पादन। पाँचवाँ अर्थ है—बड़ी-बड़ी नदी घाटी, जल-विद्युत योजनाओं के फलस्वरूप नगर-नगर, गाँव-गाँव में जगमगाती बिजलियों की नित नई दीवाली। हरे रंग का छठा और अन्तिम अर्थ है—हरियाली और खुशहाली के वे सुन्दर सपने जो रेगिस्तान के सूखे खेत, गरीबों के भूखे पेट और लाखों जवानों के बेकार हाथ देख रहे हैं। तिरंगे का हरा रंग हमसे पूछा रहा है कि हरियाली खुशहाली के वरदानों का उपयोग कर रहे हो तुम...। भला सूखे और बेकारी के अभिशापों का निवारण कौन करेगा?

राष्ट्रध्वज के तीन रंगों की तरह नीले चक्र का भी अपना एक इतिहास है। चक्र का सीधा-सादा अर्थ है—चक्कर, गोल, पहिया और घूमना। हमारे पूर्वजों ने चमकते हुए सूर्य, चन्द्र आदि ज्योति-पिण्डों को गोल चक्कर खाते देखा तो उसका नाम रखा ज्योतिचक्र। एक के बाद एक करके छह ऋतुओं को घूम-घूमकर आते देखा तो नाम रख दिया ऋतुचक्र। इसी प्रकार दिन-रात, सप्ताहों और मासों का चक्कर कालचक्र कहलाया। इनकी देखा-देखी महात्मा बुद्ध ने अपने शिष्यों को धर्म की जो 24 शिक्षाएँ दीं उनका नाम रखा 'धर्म-चक्र'। इस धर्मचक्र को सम्राट् अशोक ने 24 अरोंवाले एक चक्र की शक्ल में अपने बड़े-बड़े स्तम्भों, स्तूपों और शिलालेखों पर खुदवाया जो अशोक के नाम पर 'अशोक चक्र' कहलाया। 26 जनवरी, 1950 को अशोक के इसी धर्मचक्र को तिरंगे झण्डे में बीचोंबीच अंकित करने का निर्णय लिया गया—जिसका सीधा-सादा अर्थ है—धर्म की विजय हो, अधर्म का नाश हो। यह ध्वज का नौवां राष्ट्रसन्देश है।

इस प्रकार हमारा तिरंगा केवल एक राष्ट्रीयचिह्न ही नहीं अपितु एक महान् सन्देश भी है, प्रेरणा भी है, उमंग भी है, एकता का नारा भी है और राष्ट्र रक्षा का शंखनाद भी है। हवा के झोंकों के साथ केवल एक तिरंगा ही नहीं लहराता अपितु उसकी हर तरंग के साथ भारतीयों के सौ करोड़ हृदय भी तरंगित हो उठते हैं। लालकिले की प्राचीर पर केवल एक ध्वज ही नहीं खड़ा होता अपितु उसके साथ यह समूचा जनतन्त्र उठकर खड़ा हो जाता है। राष्ट्र के आह्वान पर हमारा ध्वज ही आगे नहीं बढ़ता अपितु महान् अभियान से भला सफलता दूर कैसे रह सकती है? यह ध्वज का दसवाँ राष्ट्रसन्देश है।

हमारे राष्ट्रीय गान और गीत

हर चींटी को अपना बिल और चिड़िया को अपना घोंसला प्यारा लगता है। यदि चीटियाँ गा सकतीं तो काम करते समय सब चीटियाँ मिलकर अपने उसी प्यारे बिल के गीत गाती सुनाई देतीं जिसमें लाखों चीटियाँ एक साथ मिलकर प्यार से रहती हैं। काश, हम चिड़ियों की बोली समझ पाते तो हर प्रातः जागकर जो सबसे मीठा गाना उनके कण्ठों से फूटता है वह उस हरे-भरे पेड़ या हरे-भरे जंगल का गीत होता है जिसकी डाली पर उनका प्यारा बसेरा है। इतना ही गहरा प्यार हमें भी अपनी जन्मभूमि से है जिसकी स्तुति के मीठे गीत हम भी सदा से गुनगुनाते आए हैं। ऐसा हमारा सबसे पहला गीत वह था जिसके पहले बोल हैं

'माता भूमिः पुत्रोहम्'—भूमि माँ है, हम पुत्र हैं।

शायद 'माँ' से बढ़कर मीठा शब्द हमारे ऋषियों को और दूसरा नहीं सूझा। और माँ-बेटे से बढ़कर प्यारा रिश्ता उन्हें ढूँढ़ने से नहीं मिला। इसीलिए उन्होंने अपनी मातृभूमि से अपना माँ-बेटा का नाता जोड़ा। इसी की तर्ज़ पर अंग्रेज़ी शासनकाल में बंगाल के उपन्यासकार बंकिमचन्द्र ने भारतभूमि की स्तुति में 'वन्दे मातरम्' शीर्षक से जो गीत गाया, वह इस प्रकार है :

वन्दे मातरम्।
सुजलाम्, सुफलाम् मलपजशीतलाम्
शस्य-श्यामलाम् मातरम्। वन्दे...
शुभ्र ज्योत्स्ना-पुलकित-यामिनीम्
फुल्ल-कुसुमित-द्रुमदल शोभिनीम्
सुहासिनीम्, सुमधुरभाषिणीम्
सुखदाम् वरदाम् मातरम्। वन्दे...

अथार्त् हे माँ, तुम्हें मेरा प्रणाम है।

मैं जिधर भी देखता हूँ उधर तेरी ही ममतामयी मूर्ति और तेरे ही प्यार के वरदान बिखरे दिखाई देते हैं। हरे-भरे मैदानों की

हरियाली में मुझे तुम्हारे ही साँवले रूप के दर्शन होते हैं। उजली रातों में तेरे ही प्यार का पुलक चाँदनी बनकर चारों ओर छिटका नज़र आता है। खिले हुए फूलों में तुम्हारे ही होंठों की मधुर मुस्कान दिखाई देती है। पेड़ों के हरे-भरे पत्तों में तेरा ही श्रृंगार दृष्टिगोचर होता है। चन्दन-सी शीतल तेरी गोदी का तनिक भी स्पर्श पा जाऊँ तो मैं धन्य हो जाऊँगा। माँ! मुझे तो पक्षियों के कलरवों में तेरा ही स्वर सुनाई देता है। तूने पीने के लिए हमें मीठा जल दिया और हमारे खाने के लिए तरह-तरह के फलों से पेड़ लाद दिए हैं। तुम्हारे इन अनगिनत वरदानों के लिए मेरा यह कृतज्ञ मस्तक तेरे प्यार के आगे झुकने को मजबूर है, माँ ! अतः अपने पुत्र का प्रणाम स्वीकार करो, स्वीकार करो।

परतन्त्रता के उस युग में यह केवल एक लोकप्रिय और मधुर गीत ही सिद्ध नहीं हुआ अपितु वह एक ऐसी चिंगारी साबित हुआ जिसने दासता में जकड़े हिन्दुस्तानियों के हृदय में क्रान्ति ला दी। वन्दे मातरम् का स्वर कानों में पड़ते ही नौजवानों के लिए अपने-अपने घरों में बैठना मुश्किल हो गया था। उनके हृदय अपने देश और देशवासियों के लिए कुछ कर दिखाने को मचलने लगते। तब वन्दे मातरम् केवल दो शब्द न रहकर हवा के ऐसे दो झोंके सिद्ध हुए जिन्होंने देश-भक्तों के हृदय में सुलगती भावनाओं को भड़का कर उन्हें भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में कूद पड़ने को विवश कर दिया। घर-घर, गाँव-गाँव और नगर-नगर से युवकों, युवतियों, किशोरों, किशोरियों की टोलियाँ ही टोलियाँ निकल कर सरकार से सीधी टक्कर लेने को चल पड़ीं। वन्दे मातरम् वीरता का एक मन्त्र था जिसका पाठ करते ही चोट और मौत का भय सदा के लिए मिट जाता और हमारे बलिदानी वीर निर्भय होकर गोलियों की बरसती बौछारों में भी आगे बढ़ते जाते थे। वन्दे मातरम् कहते

ही जुलूस में शामिल लोगों को पुलिस की लाठियाँ ऐसे लगतीं जैसे फूल बरस रहे हों। सत्याग्रही सिपाही जेल की कोठरियों में हँसते-हँसते ऐसे कदम रखते मानो माँ के मन्दिर में प्रवेश कर रहे हों। जेल में जिसे जितनी अधिक सजा मिलती वह उतने ही ऊँचे स्वर में चिल्लाता—वन्दे मातरम्। फाँसी पर झूलते हुए क्रान्तिकारियों के अन्तिम शब्द होते—वन्दे मातरम्। वन्दे-मातरम् के इस जोशीले प्रभाव को देखकर अंग्रेज़ सरकार क्रान्तिकारियों के बम-बन्दूक से उतना नहीं डरती थी जितना वन्दे मातरम् के दो शब्दों से। इस प्रकार भारत की आज़ादी का सारा संग्राम वन्दे मातरम् के जयघोष के साथ लड़ा और जीता गया। इसके इस ऐतिहासिक महत्त्व के कारण जनवरी 1950 में इसे भारत का राष्ट्रगान घोषित किया गया।

हमारा दूसरा राष्ट्रगीत है–

जन-गण-मन अधिनायक! जय हे, भारत भाग्य विधाता।
पंजाब-सिंधु-गुजरात-मराठा-द्राविड़-उत्कल-बंग,
विन्ध्य, हिमाचल, यमुना गंगा, उच्छल-जलधितरंग,
तव शुभ नामे जागे,
तव शुभ आशिष माँगे, गाहे तव जय गाथा।
जन-गण-मंगलदायक! जय हे, भारत भाग्य विधाता !
जय हे, जय हे, जय-जय-जय-जय हे !

अर्थात् हे भारतराष्ट्र, तुम्हारी जय हो। 100 करोड़ की यह जनसंख्या तुम्हारी ही प्रिय प्रजा है। विश्व का यह सबसे महान् जनतन्त्र तेरी ही धरती पर विकसित हो रहा है, राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों के इस गणराज्य के आधार तुम्हीं हो। तुम्हीं हमारी भाग्य-रेखा और तुम्हीं भारत का संविधान हो। इस भूमि

पर तुम्हारी सार्वभौमसत्ता सदा अजर-अमर रहे। हमारे मन, बुद्धि की समस्त भावनाएँ तुम्हारे चरणों में अर्पित हैं।

पंजाब से लेकर बंगाल तक के सारे प्रदेश तेरी ही विशालता के छोटे-छोटे अंग हैं। हिमालय से लेकर विन्ध्याचल तक की समस्त पर्वतश्रेणियाँ तेरी ही प्राकृतिक सौन्दर्य की घटक हैं। गंगा-यमुना आदि अनगिनत नदियाँ तेरे ही शरीर की नस नाड़ियाँ हैं। तीनों ओर लहराते सागर में उठती हुए तरंगें तेरा ही अभिषेक कर रही हैं। तुम्हारा नाम आते ही ये विविध नाम और विविध रूप अपने आप समाप्त हो जाते हैं और शेष रह जाता है केवल एक ही नाम—भारत! इस प्रकार हे मेरे राष्ट्र! तुम्हीं मेरे भाग्यविधाता और तुम्हीं मेरे सर्वस्व हो। अतः हम तुम्हीं से यह आशीर्वाद माँगते हैं कि तुम सदा सर्वदा जन-जन का कल्याण करते रहो, तुम्हारी कृपा से हमारा यह लोकतान्त्रिक गणराज्य सदा फूलता-फलता रहे और हम सदा तेरी विजय के गीत गाते रहें।

यह गीत विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर का बनाया हुआ है।

भाव, शब्द-सौन्दर्य और संगीत की दृष्टि से ये दोनों राष्ट्रगीत और राष्ट्रगान एक-से-बढ़कर एक हैं। दोनों बंगाल के महान् साहित्यकारों के लिखे हुए हैं और दोनों ही देशभक्ति की भावनाओं से भरे हुए हैं। अतः 26 जनवरी 1950 को इन दोनों को राष्ट्रगीत और राष्ट्रगान के रूप में स्वीकार किया गया और दोनों को समान आदर व सम्मान दिया गया। आर्केस्ट्रा या वाद्यवृन्द के लिए जन-गण-मन की शब्द रचना अधिक अनुकूल है। अतः वाद्यवृन्द के रूप में अधिकतर जन-गण-मन की ही धुन बजाई जाती है।

1. 'जन-गण-मन' राष्ट्रगीत गाने और उसकी धुन बजाने के भी नियम हैं। राष्ट्रगीत गाते समय या राष्ट्रधुन बजाते समय उपस्थित लोगों को उसके सम्मान में खड़ा हो जाना चाहिए।

2. खड़ा होने की स्थिति में लोगों को सावधान होने की मुद्रा में रहना चाहिए।
3. राष्ट्रधुन एक मिनट से अधिक नहीं बजनी चाहिए।
4. 15 अगस्त और 26 जनवरी को जब राष्ट्रपति, राज्यपाल, उपराज्यपाल या कोई मन्त्री सलामी लें तब भी राष्ट्रगीत गाया जाता है।
5. भारत की मंगल कामना के लिए आयोजित भोज के अवसर पर विदेशों में भारत सरकार के प्रतिनिधि भी राष्ट्रीयगीत का व्यवहार करते हैं।

इन सब नियमों से बढ़कर हमारे मन में अपने प्रिय राष्ट्र और अपने प्रिय राष्ट्रगीतों के प्रति सम्मान की भावना होनी चाहिए।

भारत का राष्ट्रीय पक्षी–मोर

हमारे संविधान ने तो अब से केवल तीन-चार दशक पूर्व 26 जनवरी, 1950 के दिन मोर को भारत का राष्ट्रपक्षी घोषित किया था। पर इससे पहले सृष्टि के आरम्भ में ही दैवी प्रकृति ने इसके मस्तक पर राजाओं की सी कलगी उगाकर मोर को पक्षियों का राजा बना दिया। अन्यथा भारत में पक्षियों की और भी तो 2000 से ऊपर जातियाँ बसती हैं, पर किसी के शरीर पर वैसी चमचमाती शाही पोशाक सजी दिखाई नहीं देती। जैसे, हरे-बैंगनी-चमकीले चन्द्रक मोर की पीठ से लेकर पूँछ के अन्तिम छोर तक सौ-डेढ़ सौ की संख्या में छपे हुए दिखाई पड़ते हैं। ऐसे अद्‌भुत सौन्दर्य को देखकर आँखों को विश्वास नहीं होता कि मोर इस धरती पर रहनेवाला कोई साधारण प्राणी होगा। इसीलिए ऐसे सुन्दर पक्षी को विषैले साँपों पर झपटते देखकर वैदिक ऋषियों के मुख से अनायास ही निकल गया–

ओ, स्वर्गलोक के सुन्दर पक्षी,
इन्द्र के प्रिय! विषधर-भक्षी,
तुमने तोड़ा शत्रु-दर्प को,
टुकड़े-टुकड़े किया सर्प को।

उसकी सुन्दरता केवल देखने भर की ही नहीं अपितु विषधर
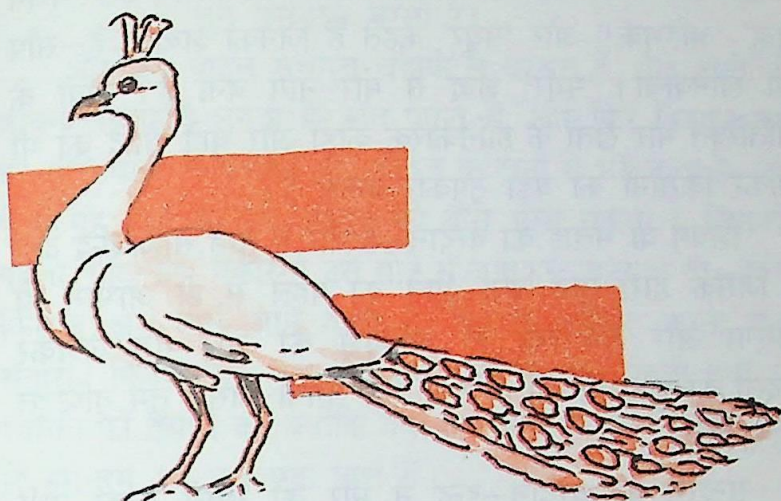
जैसे भयंकर शत्रुओं से मानव की रक्षा करके युग-युग से हमारा कल्याण कर रहा है तो हम हृदय से उसका अभिनन्दन क्यों न करें? भाव-विभोर होकर यदि हम उसे देवदूत समझ लें तो इसमें आश्चर्य ही क्या? क्योंकि देव का अर्थ है—चमकीला या चमकीले सुन्दर गुणों वाला। मोर का रूप भी चमकीला और गुण भी एक-से-एक बढ़कर हैं। फिर उसके दिव्यपक्षी होने में क्या सन्देह? वह आकाश का देवता नहीं, धरती का देवता है, खेतों का देवता, जंगलों का देवता, बागों का देवता और किसानों का देवता। युग-युग से चली आ रही मोर विषयक अनगिनत कथाएँ और दन्तकथाएँ इसका स्वयं प्रमाण हैं।

कहते हैं देवताओं के राजा इन्द्र ने मोर को 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के तीन वर दिए थे—

सत्यं का वरदान—प्रिय पक्षी! जाओ, तुम सत्पुरुषों की रक्षा के लिए दुष्ट साँपों का नाश करो। सचमुच, मोर को जहाँ भी साँप

दिखाई देता है वह उसे मारकर खा जाता है। इसीलिए उसे 'भुंजग भुक्' 'अहिभुक!' और 'मयूर' कहते हैं जिनका शब्दार्थ है—साँप को खानेवाला। 'मयूर' शब्द से मोर नाम बना है। साँपों के अतिरिक्त मोर खेतों के हानिकारक कीड़ों और चूहों आदि को भी खाकर किसानों का बड़ा उपकार करता है।

शिवम् या भलाई का वरदान—हे मोर मैं तुम्हें सहजबुद्धि देता हूँ जिसके द्वारा तुम्हें वर्षा आने का पहले से ही आभास हो जाएगा और तुम ज्यों ही आकाश की ओर मुँह उठाकर बादलों को पुकारोगे त्यों ही वर्षा होने लगेगी जिससे तुम वृष्टिदूत कहलाओगे।

सुन्दरम् का वरदान—इन्द्र ने मोर को सबसे सुन्दर पक्षी बनाने के लिए उसके सिर पर शिखा या शिखण्ड उगा दिया जिससे वह शिखी और शिखण्डी कहलाया। उसने मोर की पीठ पर सुन्दर चमकीले पंखों के गुच्छे सजा दिए जिससे वह कलापी कहलाया। इन्द्र ने मोर के पंखों पर रंग-बिरंगे चन्द्रक छापे जिससे उसका नाम चन्द्रकी पड़ा। इन्द्र द्वारा दिए गए वर्ह अर्थात् उड़नपंखों के कारण मोर को वर्ही भी कहते हैं।

इस कथानक द्वारा मोर का वर्षा, कृषि और कृषक—इन तीनों के साथ स्वाभाविक सम्बन्ध प्रकट होता है जो भारत जैसे कृषिप्रधान देश के प्रसंग में सौ-फीसदी सत्यसिद्ध होता है क्योंकि आज भी यहाँ कृषि का मुख्य आधार है—वर्षा। समय पर पानी बरसा तो समझो यहाँ का किसान मालामाल, न बरसा तो बेचारा दाने-दाने को बेहाल। फिर भला यहाँ किसान के लिए उस मोर से बढ़कर और कौन प्रिय हो सकता है जो उसके लिए वर्षा का पहला सन्देश लाता है। वह उसके स्वर में स्वर मिलाकर क्यों न गा उठे और उसके लय में लय मिलाकर क्यों न नाच उठे।

बहे बयार पुरवैया, मैं नाचूँ ताता थैया
तुम छम-छम बरसो रे!

और जब बादल सचमुच धड़ाके से बरसते हैं, सूखे खेतों में जीवन लहलहाने लगता है, खेत पकते हैं, और फिर किसान का घर सोने-चाँदी से चमकते गेहूं, चावल के दानों से भर जाता है—तो भला वह वर्षा के उस अग्रदूत को कैसे भुला सकता है जिसकी पहली 'पीहू-पीहू' पुकार ने उसे सोते से जगाकर उकसाया था—उठो, किसान अब वर्षा आने वाली है! झटपट चलकर अपना खेत संवारो। फिर आओ, तुम और हम दोनों मिलकर पहली वर्षा के स्वागत की तैयारी करें क्योंकि वर्षा हम दोनों का प्राण है इस नाते से हम-तुम 'दो तन एक प्राण हैं।'

इस प्रकार वर्षा का सहचर होने का कारण मोर के साथ किसान की जितनी आत्मीयता है उतनी किसी और से नहीं। यहीं कारण है कि भारत के गाँव-गाँव और घर-घर में मोर का केवल अभिनन्दन ही नहीं अपितु उसका पूजन भी किया जाता है। 'भू-देव' अर्थात् भूमिदेवता मानकर उसकी पूजा करते हैं। महाराष्ट्र के वनवासी बरली लोग पीतल के बर्तन में मोर के पंखों को सजाकर गृहदेवता 'हिरबा' के रूप में मयूर पूजन करते हैं। दक्षिण भारत में पौंगल के त्योहार पर स्त्रियाँ घर-घर में मोर की पूजा करती और गीत गाती हैं।

मध्य भारत में एक अन्य मोरी जाति का नाम ही मोर शब्द से बना है क्योंकि मोर ही उनका कुलदेवता है और मोर की आकृति ही उनके कुल का चिह्न है। इसी प्रकार भारत के महान् विजेता चन्द्रगुप्त मौर्य का भी कुलचिह्न भी मयूर था, अतएव यह मौर्य कहलाया। आज भी उड़ीसा में स्थित प्राचीन मयूरभंज रियासत के वंशजों का कुलचिह्न मोर है। अहीर लोग भी अब तक मोर का

कुलचिह्न प्रयोग में लाते हैं। लगभग सारे भारत में यह विश्वास प्रचलित है कि जब देवी सरस्वती वीणा बजाती हैं तो मोर भी वीणा के स्वर में स्वर मिलाकर ऊँची से ऊँची आवाज़ में गाता है। देवताओं के सेनापति कार्तिकेय को मोर की आकृति इतनी पसन्द थी कि उसका वाहन भी मोर की शक्ल का ही मयूर था। संस्कृत के महान् आचार्य वराह मिहिर ने मयूर दर्शन को बहुत शुभ माना है तो कई अन्य विद्वानों ने मोर को धन-सम्पति, प्रसन्नता और खुशहाली का प्रतीक माना है।

मयूर दर्शन से सचमुच आँखों की प्यास बुझती है। लगता है बनाने वाले ने इसकी कलगी को बड़े धैर्य और लगन से बनाया होगा। इसका एक-एक तार कितनी सफ़ाई और बारीकी से कतरा-तराशा दिखाई देता है। नीले-चमकीले, रेशमी बालों से बनी पंखे की आकार की कलगी मोर और मोरनी दोनों के मस्तक के बीचों-बीच सजी दिखाई देती है। हो न हो राजाओं और सम्राटों ने इन्हीं की नकल पर नकली कलगियों और नकली राजमुकुटों का आविष्कार कर लिया होगा। इसी शाही प्रेरणा के लिए विश्वभर के राजाओं-महाराजाओं को मोर का सदा ऋणी रहना होगा।

यदि मोर-पंख न होते तो मोर की गिनती भी मुर्गीवंश के साधारण तीतरों-बटेरों आदि की जाति में की जाती क्योंकि मोर इसी जाति का एक पक्षी है—जैसे कीचड़ में कमल या गुदड़ी में लाल। मोर को आदर, मान और प्रशंसा दिलाने का सारा श्रेय मोर-पंखों को है जो केवल मोर के शरीर पर ही उगते हैं, मोरनी के नहीं। दूर से देखने पर मोरनी भी एक बड़ी मुर्गी-सी दिखाई देती है। दोनों में अन्तर है तो केवल कलगी का। मोरनी के सिर पर मोर जैसी नीली कलगी होती है जबकि मुर्गी के सिर पर या तो बिल्कुल कलगी नहीं होती है या उसकी जगह लाल खूनी रंग

का निशान-मात्र दिखाई देता है। असली मोर पंख का वरदान केवल नर मोर को ही प्राप्त है। गले से लेकर उसकी पूँछ तक सारी पीठ हरे, बैंगनी चमकीले पंखों से ढकी रहती है। सब पंखों के बीचों-बीच एक नीली धारी और 'वी' आकार का भूरा धब्बा छपा होता है। कंधे आदि के अन्य पंखों में काले-हल्के भूरे रंग के मिले-जुले निशान होते हैं। उन पंखों और दुम के पंखों का रंग भूरा चमकीला होता है।

पक्षियों में मोर सबसे सुन्दर है। मोर के शरीर में भी उसकी पूँछ सबसे सुन्दर है जो लगभग एक मीटर लम्बी होती है। इसमें एक सौ से लेकर डेढ़ सौ तक पंख होते हैं। प्रत्येक पंख अलग-अलग सैकड़ों रंगों से बना होता है जिस पर नेत्रक या अँखुए का रंग-बिरंगा चिह्न छपा होता है। प्रत्येक अँखुए में नीले गहरे धब्बे के साथ-साथ नीले तोबियाँ रंग की छाप से पूँछ बहुत सजती है। पर मोर का असली अलंकार है—उसकी फैली हुई दुम।

वर्षा ऋतु में ज्योंही आकाश पर काली घटाएँ छाने लगती हैं त्योंही मोर के पंख नाचने को मचलने लगते हैं। आकाश की ओर मुँह उठाकर कोने-कोने से मोर कूकने लगते हैं 'पीहू-पीहू' मानो बादलों को पुकार-पुकार कर कह रहे हों—पानी दो, पानी दो। कहते हैं मोर की करुण पुकार सुनकर बादल का हृदय पिघल जाता है और बरसने लगती है सावन की पहली फुहारें। फिर बिजलियाँ कड़कती हैं, मूसलाधार वर्षा होती है और आकाश के एक छोर से दूसरे छोर तक प्रकट होता है सतरंगी इन्द्रधनुष। ऐसे सुन्दर सुहावने समय में मोर के लिए मौन रहना असम्भव होता जाता है और अनायास ही उसके दोनों पाँव बूँदों के ताल के साथ ताल मिलाकर थिरकने लगते हैं। छम, छम, छम, छम। आनन्द और उल्लास की इस मस्ती में मोर की पूँछ धीरे-धीरे खुलती है।

नेत्रकों वाले पंख क्रमशः ऊपर, और ऊपर, सबसे ऊपर तक धीरे-धीरे फैलते हुए अन्त में तन कर खड़े हो जाते हैं और आरम्भ हो जाता है मोर का अलौकिक नृत्य। प्रायः मोर हरे-भरे खेतों या झाड़ियों की पृष्ठभूमि में चार-पाँच मोरनियों के बीच में खड़ा होकर नाचता है, जैसे बरसाने की गोपियों का कान्हा। बस, यही वह अभूतपूर्व दृश्य है जिसे देखकर संस्कृत के महान् कवि कालिदास ने अपने काव्य 'मेघदूत' में मयूर-नृत्य का वह लोकप्रिय वर्णन किया था जिसका अनुवाद इस प्रकार है—

नाच उठे बरखा में मोर!
शिथिल हुए थे जग के प्राणी,
धूप-ताप-गरमी में झुलसे
वर्षा-ऋतु के आ जाने पर,
मोर-मोरनी फिर से हुलसे
देख घटा पश्चिम की ओर
नाच उठे बरखा में मोर!

पावस में, रिमझिम में मन की,
पूर्ण उमंगें हुईं अधूरी
नीले-हरे पंख बिखेरे,
करते नृत्य मयूर-मयूरी
होकर दोनों प्रेम-विभोर
नाच उठे बरखा में मोर!

मोर के इस मनमोहक नृत्य ने न जाने कितने मूक्र-दर्शकों को कवि, कलाकार, मूर्तिकार, संगीतकार और नृत्य का आचार्य बना दिया। भरत-मुनि ने मयूर नृत्य को देखकर ही नृत्य कला का आविष्कार किया। उन्होंने नाचते हुए मोर के पंखों की क्रियाओं को देख-देखकर हाथों की 31 स्वतन्त्र मुद्राओं और 27 मिली-जुली

मुद्राओं का निर्माण किया। इसी प्रकार जैसे-जैसे मोर पैरों से ताल देते हुए नाचता है, ठीक वैसे-वैसे भरत-मुनि ने भी अपने पैरों से ताल देते हुए मोर से नृत्य करना सीख लिया। इस प्रकार मोर ही हमारा आदिम नृत्यगुरु है। उसी की नकल पर तमिलनाडु का 'भरत-नाट्यम' केरल का 'कथकलि' और आन्ध्र का 'कुचिपुड़ि' नृत्य बने और वे आज तक हमारे राष्ट्रीय नृत्यों के रूप में संसारभर में प्रदर्शित किए जाते हैं।

गाँवों और जंगलों में मोर नाचता है तो उसकी ताल के साथ ताल मिलाकर वहाँ की स्त्रियाँ और पुरुष भी नृत्य करने लगते हैं जो लोकनृत्यों के नाम से प्रसिद्ध हैं। मध्यप्रदेश के बैगा-पुरुष मोर जैसी भड़कीली पोशाकें पहने अपनी पगड़ियों में मोर-पंख खोंसकर 'करमा' नृत्य करते हैं तो बैगा-महिलाएँ अपने केशों में मोरपंख सजाकर नृत्य में सम्मिलित होती हैं। महाराष्ट्र के बरली-बनवासी पीतल के पात्र में मोरपंखों से 'हिरबा' देवता बनाकर उसके चारों ओर नाचते गाते हैं। बिहार के चौसा लोग मोरपंखों जैसे भड़कीले-चमकीले वस्त्र पहनकर बिल्कुल मोर-मोरनी की तरह 'फूल-बसन्त' नृत्य करते नहीं थकते। मणिपुर के नागाओं का कंभालिक-नृत्य प्रसिद्ध है जिसमें वे पगड़ी पर मोरपंख लगाकर नाचते हुए मोर के पैरों की तरह अपने पैरों को ताल पर उठाते रखते हैं। 'जाके सिर मोर मुकुट' उस कृष्ण का बाल-नृत्य देखते हुए न ब्रज के गोप-गोपिकाएँ थकते थे और न आज हम और आप उसे भुला पाते हैं। विशेषकर कृष्ण-जन्माष्टमी के उपलक्ष्य में देश के प्रान्त-प्रान्त, नगर-नगर और हर मन्दिर में बालकृष्ण की झाँकियाँ निकाली जाती हैं और सिर पर मोर-मुकुट पहने बाल-कलाकार नृत्य करते हैं।

केवल नृत्य में ही नहीं अपितु भारतवासियों के रोम-रोम में

मोर इतना रसबस गया है कि हमारा कोई उत्सव, त्योहार, विवाह, जन्मदिन या कोई मंगल कार्य ऐसा नहीं होता जिसमें घर-आँगन की दीवारों पर, द्वारों पर, वेदियों पर और विविध पात्रों व फलकों पर, मोर की आकृतियाँ अंकित नहीं की जाती हैं। भारत का ऐसा कोई कवि नहीं जिसने मोर के सौन्दर्य गीत न लिखे हों, कोई ऐसा संगीतज्ञ नहीं जिसने राग-बसन्त, मल्हार राग और मधु-माधवी रागिनी में मयूरी 'प्रेम की प्यास' न गाई हो। यहाँ का कोई मूर्तिकार ऐसा नहीं जिसने मृत्पाओं-स्तूपों-काँस्यपटलों और पत्थरों पर मोर की मूर्तियाँ न तराशी हों। भारत के हर चित्रकार की कला तब तक पूर्ण नहीं होती जब तक वह डाली पर बैठे, जंगल में चुगते, खेतों में नाचते या चोंच में साँप को दबाए मोर का सफल चित्रण नहीं कर लेता।

मयूर प्रेम के इन राष्ट्रव्यापी पत्थरों को पढ़-सुनकर यह बात समझ में आती है कि हमारे संविधान-निर्माताओं ने 26 जनवरी, 1950 को एकाएक कानून पास करके मोर को भारत का राष्ट्रीय-पक्षी घोषित नहीं कर दिया अपितु इससे पहले युग-युग से यह पक्षी कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और कच्छ से लेकर असम तक के समस्त भारतवासियों का सबसे प्रिय पक्षी बन चुका था। मोर सदा से हमारे राष्ट्र को कला और सौन्दर्य के उपहार देता आ रहा है। बदले में कृतज्ञ राष्ट्र ने उसके योगदान को मान्यता देकर उसे राष्ट्र पक्षी घोषित किया तो इससे दोनों का सम्मान बढ़ा है। भारत को गर्व है कि वह संसार के सबसे सुन्दर पक्षी, मोरों का देश है और मोर का गर्व है कि वह संसार के सबसे बड़े लोकतन्त्र का राष्ट्रपक्षी है।

हमारा राष्ट्रपक्षी, हमारी राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है—जिस तरह अनेक रंगों, अनेक चन्द्रकों और अनेक पंखों से एक मोर

सजता है उसी तरह साँवले, गेहुँए, गोरे आदि अनेक रंगों के नागरिकों, कश्मीर, पंजाब, दिल्ली, बंगाल आदि और अनेक प्रान्तों और अनेक धर्मों, भाषाओं, राति-रिवाजों से बनता है हमारा यह एक राष्ट्र भारत। इस प्रकार हमारी 'अनेकता में एकता' की साक्षात मूर्ति है हमारा राष्ट्रपक्षी मोर।

अपने राष्ट्रपक्षी की रक्षा करना भारत के हर नागरिक का राष्ट्रीय कर्तव्य है। राष्ट्रपक्षी को मारना एक संवैधानिक अपराध है।

हमारा राष्ट्रीय पशु–शेर

काश, कि शेर को स्वयं यह पता होता कि वह भारत जैसे महान् देश का राष्ट्रीय पशु है, अन्यथा उसमें चक्रवर्ती राजा के सभी लक्षण पहले से ही विधमान हैं क्योंकि शेर भारत के किसी प्रान्त या प्रदेश का हीं वासी न होकर एक अखिल भारतीय जन्तु है। हिमालय से लेकर नेपाल, भूटान तक, असम से लेकर सुदूर पश्चिम तक और उत्तर-प्रदेश से लेकर दक्षिण समुद्र तक–जहाँ-जहाँ तक भारत गणतन्त्र राज्य की सीमाएँ हैं, वहाँ-वहाँ तक शेर का साम्राज्य फैला हुआ है। गर्म से गर्म रेगिस्तानी झाड़खण्डों में भी शेर उसी ठाट से निवास करता है जिस शान से वह हिमालय की छह-सात हज़ार फुट ऊँचाइयों पर घूमता दिखाई देता है। वह असम के वर्षा बहुल प्रदेश में भी उतनी ही आसानी से अपने आपको ढाल लेता है जितनी सरलता से वह ठण्डे बर्फानी शंकुवनों के अनुकूल बन जाता है। उसे तो बस छिपने के लिए घनी, काँटेदार झाड़ियाँ, दिन में दो-तीन बार पीने को बहता पानी और खाने को चाहिए अपने बाहुबल से मारा हुआ शिकार। प्रायः सारे भारत में थोड़ी बहुत ये सुविधाएँ मिल जाती हैं, अतः सारा भारत शेर का घर है, पर उसका असली गढ़ है, मध्यप्रदेश, उत्तर-प्रदेश, महाराष्ट्र और असम।
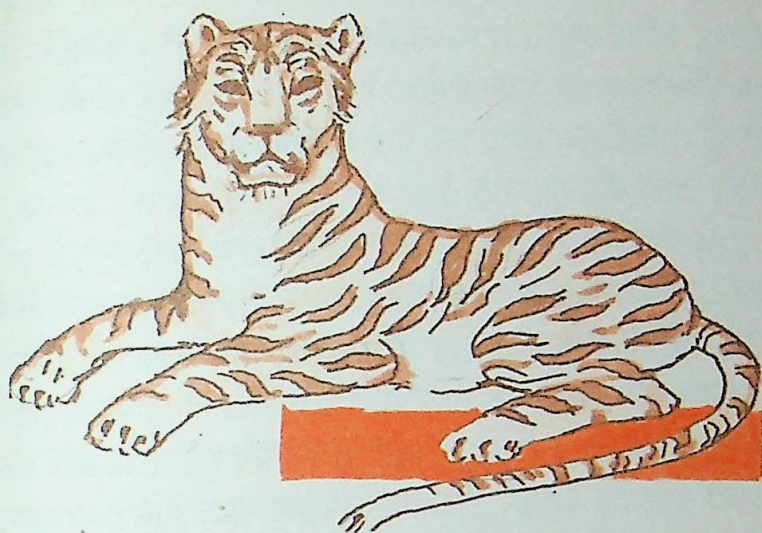
बल, वीरता और स्फूर्ति में सदा से शेर वीरों का आदर्श रहा है। शेर की शक्ति का अनुमान इस उदाहरण से लगाया जा सकता है कि मामूली गाय-बैल को वह ऐसे मुँह से उठा ले जाता है जैसे बिल्ली चूहे को मुँह में दबोचकर भागती है। वह भारी से भारी भैंसे को पहाड़ों की ऊँचाई तक खींच ले जाता है। साधारण बैल को तो वह फुटबाल की तरह छह-सात गज़ तक उछाल फेंकता है। जवान शेर की लम्बाई मुँह से पूँछ तक छह-साढ़े-छह फुट तक और उसका वजन चार-पाँच सौ पौंड तक होता है। ऐसा पहलवानी डील-डौल होते हुए भी वह बिजली की फुर्ती से अपने शिकार पर टूट पड़ता है। पलक झपकते ही वह जानवर की गर्दन के नीचे अपना मुँह देकर और पंजे पीठ पर गाड़कर इस तपाक से उसकी गर्दन को घुमाता है कि वह टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। उस समय वह यमराज की कराल मूर्ति दिखाई देता है इसीलिए बड़े-से-बड़े हाथी भी शेर के सामने आने से डरते हैं। अनुभवी शिकारियों का

तो यहाँ तक दावा है कि शेर, सिंह की अपेक्षा भी कहीं अधिक लड़ाकू, अधिक क्रोधी तथा अधिक साहसी होता है। क्रोध में शेर का आक्रमण इतना भयंकर होता है कि वह सिंह को भी चीरफाड़ देता है। कान का वह इतना तेज़ कि तनिक-सी आहट होते ही उसके कान खड़े हो जाते हैं।

सुन्दरता में भी शेर किसी राजकुमार से कम सुन्दर नहीं होता। उसकी खाल के बादामी रंग पर आड़ी काली धारियाँ ऐसी दिखाई देती हैं जैसे बादामी मखमल की राजसी पोशाक हो। कान के बाहर काले बालों पर सफेद चित्ता ऐसे लगता है जैसे काली घटाओं से झाँकता हुआ चाँद। छाती व पेट की दूधिया सफेदी और पूँछ का दुरंगापन देखकर भारत का रंग-बिरंगापन याद आए बिना नहीं रहता। आखिर इसी देश का राष्ट्रपशु जो ठहरा—शेर। उसकी आँखें दिन में हरितमणि-सी और रात को रोशनी पड़ने पर अंगारे जैसी दहकती हैं।

वीरों का स्वभाव है कि वे अकारण ही निर्दोष लोगों पर वार नहीं करते। प्रसिद्ध शिकारियों का कहना है कि शेर भी एक शान्ति प्रिय जन्तु है और व्यर्थ के लड़ाई-झगड़े, भीड़-भाड़ और शोर-शराबे से दूर ही रहना पसन्द करता है। दिन में वह अपनी खोह में या ठण्डी छाया में सुस्ताता रहता है। शिकार के लिए वह प्रायः शाम को निकलता है। राहगीरों पर अकारण ही हमला नहीं करता। जंगल में चलते हुए यदि अचानक कोई शेर आता हुआ दिखाई दे जाए तो वह चुपके से एक ओर को सरक जाता है और पथिक के लिए रास्ता छोड़ देता है। इसके विपरीत यदि उसे छेड़ दिया जाए तो वह बदला लेकर छोड़ता है, यहाँ तक कि वह पक्का आदमखोर ही बन जाता है और घात लगाकर पशुओं के चरवाहों, जंगल के राहगीरों और पड़ोस के ग्रामीणों व पालतू पशुओं तक

को फाड़कर खा जाता है। अन्यथा उसके स्वाभाविक आहार हैं—नीलगाय, सूअर, हरिण आदि। यदि ये न मिल पाएँ तो भूखा शेर, बैल, भैंसे, बन्दर, सेही, खरगोश और मोर आदि में से जो कोई सामने आ जाए उसी को दबोच लेता है। शिकार मारने के बाद या तो शेर उसे वहीं खा जाता है या किसी सुरक्षित स्थान में ले जाता है। शिकार को पीठ पर लादकर वह ऊँची बाड़ को भी आसानी से फाँद जाता है। भरपेट खा चुकने के बाद शिकार के अवशेष को वह ढककर रख देता है और पानी पीने दूर तक निकल जाता है। दिन में प्रायः वह दो बार पानी पीता है पर गर्मियों में उसे प्यास भी अधिक लगती है और गर्मी भी। अतः प्रायः वह नदी या तालाब के किनारे पानी में ही बैठना पसन्द करता है।

कल्पना करो कि यदि ऐसे वीर और सुन्दर जन्तु का सदा के लिए अन्त हो जाए तो राम राम! ऐसा भंयकर विचार भी मन में लाना पाप है क्योंकि यह भगवान् की एक सुन्दर रचना है। इसके कारण फसलों को नष्ट करने वाले हरिणों, नीलगायों, जंगली भैंसों आदि की संख्या सीमा से अधिक नहीं बढ़ पाती और प्राणीजगत् में प्रकृति का सन्तुलन बना रहता है। यदि शेर न हो तो हरिण आदि तृणभोजी जंगली जन्तुओं की आबादी इतनी बढ़ जाए कि आसपास के गाँवों में फसल का एक तिनका भी किसान के हाथ में न आए। यदि शेर न रहे तो भगवान् की सृष्टि अधूरी रह जाए। हम लोग अपने राष्ट्रपशु से वंचित हो जाएँ। चिड़ियाघरों और सरकसों का सबसे बड़ा आकर्षण समाप्त हो जाए और संसार से वीरता का सर्वश्रेष्ठ उपमान सदा के लिए खत्म हो जाए। अतः भारत में कौन नहीं चाहेगा कि हमारा राष्ट्रपशु दुनिया रहने तक चिरजीवी और सुरक्षित बना रहे।

किन्तु इन शुभकामनाओं के विपरीत यह कटु सत्य है कि कुछ लोभी शिकारी बढ़िया और मँहगी खाल के लिए इनकी अन्धाधुन्ध हत्या करने पर तुले हुए हैं क्योंकि विदेशों में शेर की एक खाल की कीमत पचास-साठ हज़ार रुपए मिल जाती है। शिकार के शौकीन कई राजाओं-महाराजाओं ने केवल अपनी बहादुरी दिखाने के नाम पर पाँच सौ से लेकर आठ सौ शेरों को अपनी गोली का निशाना बना दिया। अनेकों विदेशी पर्यटक महज़ शेर का शिकार करने के उद्देश्य से यहाँ आते रहे हैं और हम लोग भी अतिथि सत्कार के नाम पर उनके लिए शेर के शिकार का विशेष प्रबन्ध करते हैं। मन-बहलाव की दृष्टि से शेर का शिकार बड़ा ही उत्तेजक और मनोरंजक माना जाता है। शेर के शिकार का सबसे प्रसिद्ध तरीका यह है कि सबसे पहले खोजी लोग मिट्टी पर छपे शेर के पंजों के निशानों का अनुसरण करते हुए शेर की उपस्थिति के स्थान का ठीक-ठीक पता लगा लेते हैं। फिर शेर के आसपास किसी पेड़ पर लगभग 20 फुट की ऊँचाई पर शिकारी के छिपकर बैठने के लिए एक मचान बाँध ली जाती है जिसे चारों ओर से पत्तों से ढक दिया जाता है। मचान और शेर के बीच में किसी पेड़ के साथ एक बकरा या भैंसे का पडरा बाँध दिया जाता है। उधर शेर को अपने छिपने के स्थान से निकालकर शिकारी की ओर लाने के लिए पहले से ही भाड़े के तीन चार-सौ आदमी हो-हल्ला मचाते हुए अर्धचन्द्राकार रूप में धीरे-धीरे शेर की ओर बढ़ते जाते हैं। शोर से शेर वैसे ही घबराता है। वह हड़बड़ाकर झाड़ियों से बाहर निकल आता है और शोर से उल्टी दिशा में चलने लगता है। 'अंधा क्या चाहे दो आँखें यही तो हाँकने वाले चाहते हैं कि शेर बैल-बकरे की ओर बढ़े। अपने शिकार को सामने देखकर शेर से रहा नहीं जाता और ज्यों ही वह उस पर झपटता

है त्योंही मचान पर छिपा शिकारी शेर का निशाना लगाकर गोली दाग देता है।

इस प्रकार अधिकतर शेर तो शिकारियों ने मार डाले। कुछेक को उन गाँववालों ने लाठियों से ढेर कर दिया जिनके पशुओं को मार खाया था। जो बच रहे, उनके रहने-बसने के जंगलों को काट-काटकर जब लोगों ने वहाँ नई-नई बस्तियाँ, कल-कारखाने और खेत-खलिहान बना लिए तो न रहे घने जंगल और न रही शेरों के रहने-छिपने की जगह। शेरों की काफ़ी संख्या बेमौत मर गयी। उनकी संख्या पचास-साठ हज़ार से घटते-घटते अब मुश्किल से दो-ढाई हज़ार रह गयी है। शेरों का ऐसा बीजनाश होते देखकर भारत सरकार ने शेर के शिकार पर रोक लगा दी और अप्रैल 1973 से बाघ संरक्षण परियोजना के अधीन शेरों के लिए देशभर में ग्यारह सुरक्षित क्षेत्र बनाए गए जिसमें मध्यप्रदेश का कान्हा-वन, राजस्थान का रणथम्भौर वन, उड़ीसा का सिमिलीपाल और बंगाल का सुन्दर वन प्रसिद्ध हैं। यहाँ शेरों की सुरक्षा और उनकी वंशवृद्धि के सब सम्भव उपाय कर दिए गए हैं जहाँ धीरे-धीरे उनकी संख्या बढ़ती जा रही है।

भारत सरकार ने सब प्रकार के वन्यप्राणियों के लिए देशभर में बीस राष्ट्रीय-उद्यान और अनेकों सुरक्षित वन बना दिए हैं जहाँ किसी भी वन्य-जीव को मारना मना है। अतः वहाँ वन्य-जीव अभय होकर विचरते हैं इसीलिए कुछ वनों को अभयारण्य भी कहते हैं। जैसे—राजस्थान में जसगन्द, बिहार में हज़ारीबाग, महाराष्ट्र में कन्हेरी, कर्नाटक में बड़ीपुर, केरल में पेरियार, असम में काज़ीरंगा और तमिलनाडु में भृदभलै प्रसिद्ध हैं।

वन्य जन्तुओं की वंश रक्षा के लिए इस प्रकार के अभियान सारे विश्व में चलाए जा रहे हैं जिनके अन्तर्गत प्रत्येक देश ने

अपने-अपने राष्ट्रपशु और राष्ट्रपक्षी घोषित किए हैं। भारत ने भी अपना राष्ट्रपशु शेर को बनाया है। शेर का ही दूसरा नाम व्याघ्र या बाघ है जिसे सरकस और चिड़ियाघरों में तो हम प्रायः देखते ही हैं पर जंगल के खुले वातावरण में स्वतन्त्र घूमते हुए शेरों को देखने का मज़ा कुछ और ही है।

हमारा राष्ट्रीय पुष्प–कमल

कमल प्रकृति की उन रचनाओं में से है जिनका जन्म सृष्टि के आरम्भ में समुद्र के जल से हुआ था। इसीलिए इसके जलज, नीरज, अम्बुज और कमल आदि अनेक नाम प्रसिद्ध हैं। इन सबका एक ही अर्थ है–जल से उत्पन्न। कमल केवल एक जलीय वनस्पति ही नहीं जिसकी जड़ें कीचड़ में, तना पानी में और ढाल जैसे बड़े-बड़े गोल पत्ते पानी पर तैरते रहते हैं अपितु वह एक अरियल भारतीय फूल भी है जो देश के गर्म ठण्डे, नम मैदानी, पहाड़ी और और बर्फानी हर रंग की जलवायु में तालाबों, झीलों, जोहड़ों और नदियों के ठहरे हुए पानी में पाया जाता है। यह श्वेत, लाल, गुलाबी और नीले रंगों में होता है जिन्हें क्रमशः श्वतेकमल, रक्तकमल, पाटिलकमल और नीलकमल कहते हैं। इसका एक नाम शतदल भी है जिसका अर्थ है सौ पंखुडियों वाला फूल। पंखुड़ियों की परत पर परत और प्रत्येक परत में 15-20 पंखुड़ियाँ होने से इसका नाम सार्थक सिद्ध होता है।

कमल केवल सदाबहार फूल ही नहीं अपितु सौन्दर्य का अनुपम भण्डार भी है। ऊपर नीला आकाश और नीचे गहरी झील का नीला जल, इन दोनों के बीच यहाँ-वहाँ चारों ओर पानी पर तैरते हुए नीलकमल देखकर आँखें तृप्त हो जाती हैं। जहाँ फूलों का रंग दूध-सा उजला और चाँदी-सा चमकीला चारों ओर बिखरा हो यदि वहाँ रात को ओस की गोल-गोल बूँदें भी टपक पड़ी हों तो धूप में उन्हें चमकते हुए देखकर सफ़ेद मोतियों का-सा भ्रम होता है। लाल और गुलाबी कमल हर मौसम में, हर आदमी को सुन्दर दिखाई देते हैं। सौभाग्यवश हर प्रदेश में समान रूप से पाए जाते हैं और सबसे अधिक मात्रा में भी।

कमल जीवन-विकास का एक उत्तम आदर्श भी है। जिस प्रकार कीचड़ में पैदा होकर भी कमल अपने गुणों के कारण उन्नति करते-करते अपने जीवन को इतना सत्य, इतना शिव और इतना सुन्दर बना लेता है कि एक दिन वनस्पति जगत का सर्वोच्च सम्मान भारत के राष्ट्रपुष्प पद को प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार गरीब से गरीब घर में पैदा हुए बच्चे अपने परिश्रम और गुणों के बल पर उन्नति करते-करते भारत के सर्वोच्च 'राष्ट्रपति पद' को भी प्राप्त कर सकते हैं। विशेषकर भारत जैसे लोकतन्त्र में जो निर्धनों, अशिक्षितों और पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए तो उन्नति की विशेष सुविधाएँ प्राप्त हैं। उन्हें अपने जीवन में ऐसे ही उन्नति करनी चाहिए जैसे कीचड़ में कमल। यदि हम में गुण होंगे तो लोग हमारी ओर अपने आप ऐसे ही खिंचे चले आएँगे जैसे कमल की रसगन्ध के कारण भँवरे उसकी ओर आकर्षित होते हैं।

कमल एक मंगलमय वस्तु भी है और एक अनुपम श्रृंगार भी। भारत की सुन्दरियाँ कमल के फूलों से अपने बालों का श्रृंगार करती हैं। विशेषकर चाँद से सुन्दर, गौर-श्यामल चेहरे के पीछे वेणी के
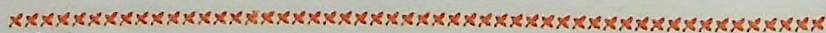
साथ सजाए कमलफूल से आकृति का रूप-रंग सौ गुना बढ़ जाता है। साँवले मुख के साथ श्वेतकमल, गौर वर्ण के साथ गुलाबीकमल और गेहुंए रंग के साथ नीलकमल के प्रसाधन की प्राचीन परम्परा आज भी चली आ रही है। महिलाएँ स्वयं कमल का शृंगार करें और उनके घर-घाट कमल के बिना उपेक्षित रह जाएं, यह कैसे सम्भव हो सकता है? जिस भवन के द्वार पर कमल का फूल अंकितन हो, जिनके स्तंभों के नीचे, मध्य में और ऊपरी भाग में खिले-अधखिले कमल पुष्प न तराशे गए हों, जिनकी छत के बीचबीच खिले कमल का रंगीन चित्रण न हो उस घर की सजावट कमल के बिना पूर्ण नहीं मानी जा सकती। विशेषकर उत्सवों, समारोहों, विवाहों और अन्य मंगलकार्यों के अवसर पर ताजे कमल पुष्प हों तो बहुत अच्छा अन्यथा विशिष्ट स्थानों पर विविध रंगों से कमल का चित्रण आवश्यक माना जाता है।

कमल एक मधुर फल भी है और एक स्वादिष्ट आहार भी। ऊपर से चपटे, चारों ओर से गोल, नीचे की ओर क्रमशः घटती गोलाई वाले 'कीप' के आकार के और हरे रंग के कमल के फूलों को कमल डोडा या चपल कहते हैं जिसे छीलने से उसमें से हरे जामुन जैसे डोडे निकलते हैं जिनका दूधिया रस और बादामी स्वाद का गूदा खाने में बड़ा स्वादिष्ट लगता है। इसके डोडे पक जाने पर सख्त हो जाते हैं जिन्हें भूनकर मखाने बनाए जाते हैं। भूनी-खिली मक्की के दानों की तरह इन मखानों को भी चबैने के रूप में या व्रत-त्योहार आदि पवित्र अवसरों पर अन्न-रहित आहार के रूप में खाया जाता है। कमल की जड़ को संस्कृत में बिस, पंजाबी में भें, कश्मीरी में नदडू और हिंदी में कमल-ककड़ी के नामों से प्रसिद्ध है। सूखे बाँस की तरह तंतु बहुल और मटमैले रंग की बीच में से छेदभरी ये जड़ें मुख्यतः सब्ज़ी-पकौड़े भुजिया, अचार आदि

बनाने में काम आती हैं। कमल के पत्ते भोजन परोसने के लिए थाली का काम देते हैं। आयुर्वेद में कमल फल एक औषधि माना जाता है।

अपने रूप-रस-गन्ध आदि इन स्थूल गुणों के अतिरिक्त कमल में अन्य सूक्ष्म गुणों की भी कमी नहीं। कमल अपने आप में एक सुन्दर कविता है और एक अलंकार भी–उपमा अलंकार, जिसमें एक सुन्दर वस्तु की दूसरी सुन्दरतम् वस्तु से तुलना की जाती है। भारतीय जीवन में कमल से अच्छा सौन्दर्य का कोई दूसरा आदर्श नहीं है। इसीलिए सौन्दर्य वर्णन में जितनी अधिक उपमाएँ कमल के साथ दी जाती हैं उतनी किसी उपमान से नहीं। विशेषकर शरीर सौन्दर्य के प्रसंग में जैसे, कमलाकृति, मुखकमल = कमल जैसी सरल, सलोनी शक्ल, सूरत; कमलनयन, कमलाक्षी, कमलनैनी = कमल जैसे बड़ी-बड़ी रसीली आँखों वाली सुन्दरी, कमलोष्ठ = कमल की पंखुडियों जैसे दो गुलाबी होंठ; करकमल, हस्तकमल = –कमल जैसे गोरे गुलाबी हाथ और उसकी पंखुड़ियों जैसी सुन्दर अँगुलियाँ; हृदय कमल खिल उठा = जैसे सूर्य उदय होने पर बन्द कमल की पंखुड़ियाँ खिल जाती हैं उसी प्रकार आपके दर्शनों से मेरा हृदय भी खुशी से फूला नहीं समाता; 'चरण' कमल बन्दों = कमल जैसे सुन्दर आपके चरणों से मेरा प्रणाम स्वीकार हो; कमल कोमल = आपका अंग-अंग इतना कोमल और सुन्दर है जैसे कमल का फूल।

कमल प्रेम का मौन निमन्त्रण भी है और मोह का मधुर बन्धन भी। सुबह खिले फूल की मीठी-मीठी महक पर मोहित होकर भोलाभाला भँवरा कमल का मधुरस पीने में दिनभर इतना मस्त रहता है कि उसे सूर्य के ढलने, पंखुड़ियों के खुले कपाट बन्द होने और यहाँ तक कि उसे स्वयं के कमल-कारागार में बन्दी हो जाने तक की सुध नहीं रहती। दिन में यही भंवरा अपने मुख की पैनी

फुहारों से वृक्ष के कठिन-कठोर तने में भी छेद करके अपना बिल बना लेता है पर यहाँ वही रसिक भंवरा प्यार की इन कोमल पंखुड़ियों को भी काटने में स्वयं को बिल्कुल असमर्थ पाता है। हाय! मोह की ये मीठी मजबूरियाँ। रातभर की इस कमल-कैद के बाद जब फिर सुबह होती है, फिर नया सूर्य निकलता है, फिर कमल की कलियाँ खिलती हैं तब कहीं जाकर भटके भ्रमर को मुक्ति मिलती है, इस मधुर बन्धन से। इसी प्रकार मनुष्य भी तो भौंरे से कम अज्ञानी नहीं। वह भी तो संसार की बाहरी चकाचौंध पर लट्टू होकर यहाँ के मीठे बन्धनों में इतना बँध जाता है कि उसे भी अपने स्वतन्त्र स्वरूप का तनिक भी स्मरण नहीं रहता। पर सौभाग्यवश फिर ज्ञान का नया सूर्य निकलता है तो उसके नए प्रकाश में वह फिर अपने असली स्वरूप को पहचान लेता है।

'तो फिर संसार में मनुष्य को अपना जीवन कैसे बिताना चाहिए?' यह प्रश्न भी है कमल, और इस प्रश्न का उत्तर भी है स्वयं कमल। जैसे कमल की जड़ दल-दल में और सारा धड़ पानी में डूबा रहने पर भी वह अपने शिखर के फूल-पत्तों को पानी से और दल-दल से ऊपर रखता है उसी प्रकार मनुष्य को भी चाहिए कि वह शरीर से संसार में रहते हुए भी अपने मन और बुद्धि को सदा संसार से ऊपर रखे। जैसे पानी में रहते हुए भी न कमल के चिकने फूल से पानी लिपट पाता है और न पत्तों पर, उसी प्रकार मनुष्य को भी चाहिए कि वह संसार की बुराइयों को अपने से दूर करे और उनमें लिप्त न रहे और कमल की भाँति सदा निर्भय बना रहे। भले-बुरे हर प्रकार के लोगों के संग रहते-रहते, खाते-पीते, उठते-बैठते, हुए भी हम कमल की तरह असंग बने रहें—यही साधु-पुरुषों की असली पहचान है। जैसे नीचे धरती पर रहते हुए भी कमल अपने से बहुत दूर, बहुत ऊँचे, बहुत बड़े सूर्य भगवान्

से सच्चा प्यार करता है, उसके उदय होने पर खिलता है और उसके अस्त होने पर कमल भी बन्द हो जाता है उसी प्रकार मनुष्य को भी चाहिए कि वह इस धरती पर रहते हुए भी सदा अपने भगवान् से सच्चा प्यार करे। हमारे अन्तःकरण में वह जैसी प्रेरणा दे हम उसी के अनुसार संसार में रहें, खाएँ-पिएँ, उठें-बैठें, बोलें, चालें और दूसरों से व्यवहार करें।

इस प्रकार भारत में कमल केवल एक सुन्दर फूल ही नहीं अपितु कमल वह सब कुछ है जो सत्य है, जो शिव या मंगलकारी है और जो सुन्दर है। वह केवल एक सदाबहार वनस्पति ही नहीं अपितु भारत की एक सदाबहार संस्कृति भी है। इसीलिए इसे साधारण फूलों से बढ़कर एक दिव्य फूल माना गया है। जिसे हमारे देव-पुरुष भी धारण करते हैं—विष्णु, सरस्वती और लक्ष्मी। लक्ष्मी देवी का कमल के साथ इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि कमल के नाम पर उसका नाम भी 'कमला' पड़ गया अर्थात कमल की बहन। कमल का एक नाम पद्म भी है। आख्यान प्रसिद्ध है कि ब्रह्माजी ने पद्मासन में बैठकर अपने मुख से चारों वेदों का पहला उपदेश दिया था तब से लेकर योगसाधना का सबसे पहला आसन पद्मासन माना जाता है।

हमारे देश में जिस फूल की इतनी महिमा है, यदि उसे हमारे संविधान ने 'भारत का राष्ट्रपुष्प' स्वीकार किया है तो वह उचित ही किया है।

□□□

मुद्रक : लक्ष्मी प्रिंटइंडिया दिल्ली-32
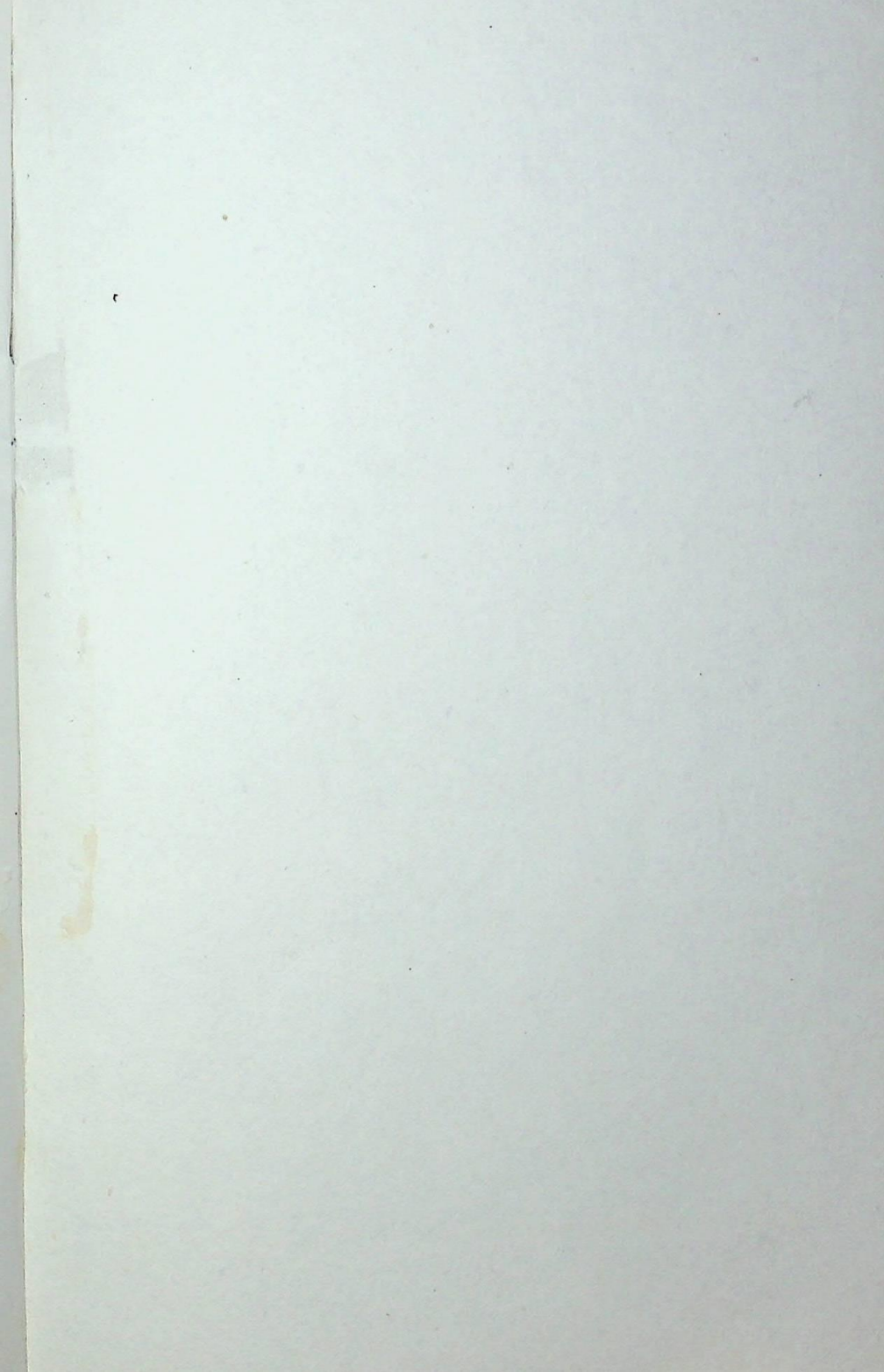
सरल बालोपयोगी कहानियां

सूखा गुलाब	शिवानी	30.00
राधिका सुन्दरी	शिवानी	15.00
स्वामीभक्त चूहा	शिवानी	20.00
बिन्दो का लड़का	शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय	20.00
आनन्द मठ	बंकिम चन्द्र	20.00
अक़्ल बड़ी या भैंस	अमृतलाल नागर	20.00
नटखट चाची	अमृतलाल नागर	25.00

प्रेमचन्द की सरल, सचित्र बाल कहानियां

बूढ़ी काकी	20.00	नमक का दरोग़ा	20.00
बड़े घर की बेटी	20.00	रामलीला	20.00
सुजान भगत	20.00	पंच परमेश्वर	20.00
परीक्षा	20.00	मन्दिर	20.00
शतरंज के खिलाड़ी	20.00	ईद का त्यौहार	20.00
दो बैलों की कथा	20.00	सब से बड़ा तीर्थ	20.00
मां की ममता	20.00	कुत्ते की कहानी	20.00
शिकारी राजकुमार	20.00	मेरी कहानी	20.00
गुल्ली-डण्डा	20.00	रामकथा	20.00
रानी सारंधा	20.00	जंगल की कहानियां	20.00

रवीन्द्रनाथ टैगोर की सरल बाल कहानियां

भोला राजा	20.00	मास्टरजी	20.00
काबुलीवाला	20.00	तोते की कहानी	20.00
पारसमणि	20.00	राजा का न्याय	20.00

शिक्षा भारती

रु. 30/-